रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष-73, अंक : 19, 4-7 अगस्त 2016 तदनुसार 23 श्रावण सम्वत् 2073 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

पञ्च कोश

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

केष्वन्तः पुरुषऽआ विवेश कान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳस्विन्नः प्रति वोचास्यत्र।।
पञ्चस्वन्तः पुरुषऽआ विवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत्।।

-यजुः० २३।५१, ५२

शब्दार्थ-प्रश्न-**केषु**+ **अन्तः** = किनमें **पुरुष** = पुरुष **आविवेश** = आविष्ट है, समाया है ? और **कानि** = कौन **पुरुषे** + **अन्तः** = पुरुष में या पुरुष के लिए **अर्पितानि** = अर्पित हैं। **ब्रह्मन्** = हे ब्रह्मन् ! चतुर्वेदवित् अथवा साक्षात् ब्रह्म ! **एतत्** = यह **त्वा** = तुझसे **उप** = समीप आकर **वल्हामसि** = हम प्रश्न करते हैं। **अत्र** = इस विषय में **नः** = हमें **किं** + **स्वित्** = क्या **प्रति** + **वोचासि** = प्रत्युत्तर देते हो, समाधान देते हो ?

व्याख्या-पुरुष = जीव पाँच में आविष्ट हैं और पाँच पुरुष के अर्पित हैं। पाँच से यहाँ तात्पर्य पाँच कोश हैं। जीवात्मा उनमें रहता हुआ उनके पृथक् है। वे पाँच कोश निम्नलिखित हैं-१. अन्नमयकोश, ३. मनोमयकोश, ४. विज्ञानमयकोश तथा ५. आनन्दमय-कोश। आचार्य इन कोशों का वर्णन इस प्रकार करते हैं-

१-पहला "अन्नमय" जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है।

२-दूसरा "प्राणमय" जिसमें निम्न पञ्चविध प्राण समाविष्ट हैं- १. "प्राण" अर्थात् जो भीतर से बाहर आता है, २. "अपान" जो बाहर से भीतर जाता है, ३. "समान" जो नाभिस्थ होकर शरीर में सर्वत्र रस पहुँचाता है, ४. "उदान" जिससे कण्ठस्थ अन्नपान खींचा जाता है और बल-पराक्रम होता है, ५. "व्यान" जिससे सब शरीर में चेष्टादि कर्म जीव करता है।

३-तीसरा "मनोमय" जिसमें मन के साथ अहङ्कार वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

४-चौथा "विज्ञानमय" जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है।

५-पाँचवाँ "आनन्दमय कोश" जिसमें प्रीति, प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिक आनन्द और आनन्द का आधार कारणरूप प्रकृति है। ये पाँच कोश कहाते हैं, इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है। (सत्यार्थप्रकाश, नवम समुल्लास)

इस सन्दर्भ से स्पष्ट सिद्ध है कि जीवात्मा इन सबके पृथक् है और मानो इनके अन्दर छिपा हुआ है। इन कोशों को = पर्दों को दूर करो, तो आत्मा का दर्शन सुलभ हो जाता है। ये पाँच कोश स्थूल और कारणशरीर से भिन्न हैं। कोई-कोई यहाँ "पाँच" से पाँच प्राण लेते हैं, जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में लिखा है-

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा।। **-३।१।६**

पूर्वोक्त जीवात्मा चित्त से = चिन्तन से जाना जा सकता है। इसमें "प्राण" प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान भेदों से संविष्ट हुआ है। सब प्राणियों का चित्त प्राणों से ओतप्रोत है, जिसके शुद्ध होने पर यह आत्मा विभूतियोंवाला हो जाता है।

उपनिषद् के इस भाव को वेद से लिया गया है-

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्त्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽ भवत्सरित्।।

-यजुः० ३४।११

स्त्रोतों सहित पाँच नदियाँ = इन्द्रियाँ, सरस्वती = ज्ञानस्वरूप आत्मा को प्राप्त हो रही हैं और वह सरस्वती = आत्मा भी शरीर रूप देश में पाँच प्रकार की सरित् = गतिवाला हो गया है। पाँच इन्द्रियाँ बाहर से लाकर आत्मा को ज्ञान देती हैं और आत्मा सब शरीर में इन्द्रियों द्वारा अपना प्रकाश करता है।

यही पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ जब पुरुष के वश में आ जाती हैं तब मोक्ष प्राप्त हो जाता है, जैसा कि कठोपनिषद् में कहा है-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्।।

-२।३।१०

जब मनसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने व्यापार से विरत हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, उसे परमगति कहते हैं।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

गायत्री मन्त्र-महामन्त्र

ले. -डा. सुशील वर्मा मास्टर मूल चन्द वर्मा गली फाजिलका (पंजाब)

गायत्री मन्त्र से वैसे तो तात्पर्य है-वह मन्त्र जो गायत्री छन्द अर्थात् 24 अक्षरों से सम्बन्धित हो। वैसे तो कई मन्त्र ऐसे है जो गायत्री छन्द में है परन्तु हमारा यहां आशय उस मन्त्र से है जिसे गायत्री महामन्त्र कहा जाता है जिसे सावित्री मन्त्र भी कहा जाता है, गुरू मन्त्र भी कहा जाता है। यह एक ऐसा मन्त्र है जिस में स्तुति, उपासना एवं प्रार्थना तीनों ही समाहित है। ऐसा मन्त्र शायद ही कोई हो जिसमें ये तीनों विविधा उपस्थित हो। यह एक ऐसा मन्त्र है जो ऋग्वेद में एक बार (3/62/10) यजुर्वेद में चार बार 3/35, 22/9, 30/2 एवं 36/3, सामवेद में एक बार (उतरार्चिक 6/3) दृष्टि गोचर होता है। सभी वेदों में यह तत्सवितुर्वरेण्यम् से प्रारम्भ होता है परन्तु यजुर्वेद में यह व्याहृतियों के साथ है अर्थात् ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् (यजु 36/3) हम प्रायः इसी का उच्चारण करते है। वहीं अथर्ववेद में यह ''स्तुता मया वरदा वेदमाता'' के स्वरूप में है।

गायत्री मन्त्र परब्रह्म की उपासना के लिए है परन्तु पौराणिकों ने इसे सूर्य उपासना के रूप में प्रसारित किया। ओ३म्/भूः/भुवः/स्वः/तत्/वरेण्यम/भर्गः/ इत्यादि जो विशेषण गायत्री मन्त्र में वर्णित है वे सब ब्रह्म स्वरूप के है, न कि सूर्य के लिए। सूर्य ब्रह्म नहीं है परन्तु सूर्य में जो व्यापक है वह ब्रह्म है।

''योऽसावादित्ये पुरूषः सोऽसावह ओ३म् खं ब्रह्म''

(यजु 40/17)

जो सूर्य में भी व्यापक पुरूष है वह मैं ओ३म् नाम वाला सर्वत्र व्यापक और सबसे बड़ा हूं। यह परमात्मा के निज सम्बन्ध में उक्ति है। गायत्री का सम्बन्ध सूर्य से कैसे जुड़ा ? इसके दो कारण है।

1. गायत्री मन्त्र का देवता सविता है। सविता जगदुत्पादक और प्रेरक प्रभु को भी कहते है और सविता का अर्थ सूर्य भी है। अतः कुछ लोगों ने गायत्री को सूर्य परक अर्थ में लिखा।

2. गायत्री का जप प्रातःकाल सूर्य दर्शन पर्यन्त है। ''सावित्रीमार्क दर्शनात्'' (मनु) अर्थात् गायत्री मन्त्र को प्रातः काल अन्धेरे में उठ कर तब तक जपें जब सूर्य दिखाई दे। इससे भी सूर्य के साथ सम्बन्ध जोड़ा गया।

आइए गायत्री मन्त्र के विषय में चर्चा करें। सभी को विदित है कि गायत्री मन्त्र के तीन पाद है और प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर अर्थात् कुल 24 अक्षर है इस विषय में बृहदारण्यक उपनिषद के पंचम अध्याय के चौदहवें ब्राह्मण में विस्तृत रूप से व्याख्या वर्णित है।

गायत्री के पहले पद ''त् स वि तु र्व रे णि यम्'' में आठ अक्षर हैं। भू मि, अ न्त रि क्ष, दि औ में भी आठ अक्षर है। गायत्री के प्रथम पद के अक्षर मानों भूमि अन्तरिक्ष द्यौ ये तीनों लोक है। जो इस पद का उच्चरण करता हुआ तीनों लोकों का ध्यान करे वह तीनों लोकों में जो प्राप्तव्य है उतना पा जाता है।

गायत्री के दूसरे पद में आठ अक्षर है ''भ र्गो दे व स्य धी महि''। ''ऋ च य जूं षि सा मा नि,'' भी आठ अक्षर है। इस प्रकार गायत्री के द्वितीय पद के अक्षर मानो ऋक यजु साम ये त्रयी विद्या है। इस दूसरे पद का उच्चारण करता हुआ वेद त्रयी विद्या का ध्यान करता है वह त्रयी विद्या में जितना प्राप्तव्य है उतना पा जाता है।

गायत्री के तीसरे पाद ''धि यो यो: नः प्र चो द यात्'' में भी आठ अक्षर है इधर ''प्राण, अपान विआन'' में भी आठ अक्षर है। इस तरह गायत्री के तृतीय पद का उच्चारण करता हुआ इस तीनों प्राणों का ध्यान करता है वह जितना प्राणि समुदाय में प्राप्तव्य है पा जाता है। इन तीन के अतिरिक्त एक चौथा पाद भी है जिसे तुरीय, दर्शत, परोरजा भी कहते है। तुरीय अर्थात् चौथा, दर्शत जो दीखता सा है, परोरजा का अर्थ प्रकृति से भी जो परे है। यही वह चौथा पद है जो विश्व में तप रहा है। इसी चतुर्थ पद के प्रताप से यह विश्व मानो पूर्ण रूपेण महान तपस्या में लीन है। जो इस पद को देख लेता है वह भी श्री एवं यश से तप उठता है, चमक उठता है जो विश्व में तपस्या करता हुआ दीखता है वही दर्शन होने से 'सत्य' पद है। 'सत्य' 'बल' में प्रतिष्ठित है यह 'बल' ही 'प्राण' है इसलिए 'सत्य' में 'बल' 'बल' में 'प्राण' प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार गायत्री अधिभौतिक जगत में ब्रदलाए में उपासक को प्राण शक्ति के महत्त्व को दर्शाती है। उसी प्रकार पिण्ड में भी गायत्री प्रतिष्ठित है। 'गय' नाम प्राणों का है 'त्र' अर्थात् रक्षा करना तात्पर्य यह कि गायत्री शरीर के प्राणों की रक्षा करती है इसीलए इसे गायत्री कहते है। गायत्री का ध्यान वास्तव में प्राणों का इन्द्रियों का संयमन है। उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी को आचार्य जिस सावित्री का उपदेश देता है। वह यही गायत्री है। शिष्य के प्राणों की रक्षा करना। उसके भीतर नव जीवन का संचार करना।

साधक जब गायत्री के मूर्त रूप को ध्यान में रखता हुआ सम्बोधन करता है हे गायत्री। त्रिलोकी तेरा प्रथम पद है, त्रयी विद्या तेरा दूसरा पद, तीनों प्राण तेरा तीसरा पद, और सबका प्रकाश करने वाला तपस्या में लीन 'परोरजा' 'दर्शत' रूप तेरा चौथा पद है। इतने पद होने के बावजूद भी तू पर रहित है 'अपद' है अर्थात् तू जानी नहीं जा सकती है तुझे बार-बार नमन।

व्याहतियों सहित गायत्री-गायत्री में पहले 'ओ३म्' फिर तीन व्याहृतियां ''भूः भुवः स्वः''। 'ओ३म्' के विषय में तो बहुत कुछ कहा गया है। इसकी चर्चा फिर कभी तीन व्याहृतियों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से तैत्तिरीय उपनिषद, छान्दोग्य, एवं बृहदारणयक उपनिषदों में वर्णन दिया गया है। व्याहृति का अर्थ है परमात्मा से पुकार, प्रार्थना ! जैसे गायत्री के चौथे पद के बारे में उपरोक्त चर्चा में वर्ण है उसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद में भी भूः भुवः स्वः के अतिरिक्त एक अन्य व्याहृति 'महः' के बारे में भी उपदेश दिया गया है। यही 'महः' ब्रह्म है, आत्मा है। भूः का अर्थ है पृथ्वी लोक, भुवः अन्तरिक्ष लोक, सुवः अन्तरिक्ष से भी परे द्यौ लोक और इससे भी परे महः आदित्य लोक। यह वह आदित्य लोक है जिससे अन्य तीनों लोक प्रकाशित होते है।

भूः अग्नि है भुवः वायु सुवः आदित्य, और महः चन्द्र । चन्द्र की ज्योति से ही सब ज्योतियों की महिमा है। अन्य सभी ज्योतियों में उष्णता है।

''चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतिॅषि महीयन्ते'' (तै. उ. शिक्षा वल्ली 5/2)

परन्तु चन्द्रमा की ज्योति में शीतलता है इसीलिए चन्द्रमा की ज्योति से सभी ज्योतियों की महिमा है। भूः ऋक् है भुवः साम सुवः यजुः और महः ब्रह्म है। ब्रह्म से ही सब वेदों की महिमा है। अध्यात्म में भूः प्राण है, भुवः अपान सुव ; व्यान तथा महः अन्न है। अन्न से ही सब प्राणों की महिमा है। अन्न की कमी से सब प्राण सुखने लगते है। नीचे दी गई तालिका इसे सरल ढंग से दर्शा रही है।

व्याहृतियां भूः भुवः स्वः महः आधिलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, आदित्य लोक, आधि ज्यौतिष, अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा, आधि विद्य, ऋक, साम, यजुः, ब्रह्म, अध्यात्म, प्राण, अपान, व्यान, अन्न

यह शरीर तत्त्वों से ही निर्मित हुआ है। मृत्यु होने पर सब तत्व अपने-अपने तत्वों में मिल जाते है। भूः अर्थात् पिण्ड की अग्नि, ब्रह्मण्ड की अग्नि में विलीन हो जाती है। भुवः अर्थात् पिण्ड की प्राण, वायु ब्रह्मण्ड की वायु में, स्वः अर्थात् पिण्ड का आदित्य चक्षु आदि इन्द्रियां, ब्रह्मण्ड के आदित्य में मिल जाती है। महः अर्थात् पिण्ड की महत्ता, उसका व्यक्तित्व विश्व की ब्रह्मण्ड की महान विभूति में समा जाती है। तीनों व्याहतियों का बहुत ही सुन्दर वर्णन छान्दोग्य एवं ब्रहदारण्यक उपनिषदों में भी उपस्थित है। छान्दोग्योपनिषद में भूः भुवः स्व का अर्थ अस्ति भाति प्रीति है अर्थात् Being, Becoming Biss सारे संसार की भांति इसका

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय.....

स्वाध्याय का प्रतीक श्रावणी पर्व आ रहा है

श्रावणी पर्व भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। श्रावणी पर्व भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। श्रावणी पर्व के बिना अपनी संस्कृति की कल्पना करना भी असंभव है। भारतीय जनजीवन में तथा वैदिक संस्कृति में पर्वों का विशेष महत्व है। श्रावणी का पर्व ज्ञानार्जन का पर्व है। स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके उसके ऊपर चिन्तन और मनन करना इस पर्व का मुख्य उद्देश्य है। सतत् और शाश्वत अध्ययन ही जीवन की गरिमा है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर श्रावणी के पावन पर्व से ही आर्य जगत् का वेद प्रचार सप्ताह आरम्भ होता है जो भाद्र कृष्ण की अष्टमी तिथि तक चलता है। भाद्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी भी भारतीय जीवन में अतिशय पुण्य की तिथि है क्योंकि इस दिन वैदिक संस्कृति के परम उद्धारक परम योगीराज और द्वापर युग के निःस्पृह राजनीतिज्ञ श्री कृष्ण का जन्म हुआ था। इन दो पुण्य तिथियों के मध्य हमारा वेद प्रचार सप्ताह मनाया जाता है जो स्वाध्याय और चिन्तन का प्रतीक है।

वैदिक धर्म में स्वाध्याय को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। वैदिक संस्कृति में मनुष्य जीवन को चार भागों में बांटा गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। स्वाध्याय को हमारी संस्कृति में इतना महत्व दिया गया है कि यह प्रत्येक वर्ण और आश्रम के लिए अनिवार्य और आवश्यक है। आश्रमों में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम केवल गुरूओं के सानिध्य में रहकर स्वाध्याय के लिए है। जब विद्या पूरी हो जाती है तो समावर्तन के समय स्नातक को आचार्य शिक्षा देता है कि-**स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्** अर्थात् जिसका स्पष्ट प्रयोजन यही है कि आगे चलकर गृहस्थाश्रम में भी स्वाध्याय करते रहो और उसमें कभी प्रमाद न करो। गृहस्थ के पश्चात वानप्रस्थी का भी प्रधान कर्म स्वाध्याय और तप ही रह जाता है। सन्यासी का समय भी परम तत्त्व चिन्तन और उपदेश के अंगीभूत स्वाध्याय में ही व्यतीत होता है। सन्यासी के लिए आज्ञा है कि -**संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकन्न संन्यसेत्।** अर्थात् सन्यासी सभी कर्मों को त्याग दे परन्तु वेद का त्याग न करे। हमारे ऋषियों-मुनियों के द्वारा स्वाध्याय को इतना महत्त्व देने का उद्देश्य यही है कि जिस प्रकार शरीर की स्थिति और उन्नति मन से होती है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मिक उन्नति भी स्वाध्याय के द्वारा होती है। आत्मिक उन्नति के बिना मनुष्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जिस मनुष्य की केवल शारीरिक उन्नति हुई है वह मनुष्य आचरण में पशु के समान होता है। स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य का व्यक्तित्व निखर कर सामने आता है।

वेद प्रचार आर्य समाज का मेरू दण्ड है। यही आधारशिला हैं जिस पर हमारा संगठन आधारित है। अतः इस समय में आर्य समाजों के द्वारा वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन किया जाता है। इस आयोजन के द्वारा जन साधारण को जागृत करना चाहिए। स्वाध्याय की वृत्ति लोगों के अन्दर पैदा करने की आवश्यकता है। इसके लिए आर्य समाजों को वैदिक साहित्य लोगों में बांटकर उन्हें स्वाध्याय के प्रति जागरूक करना है। वैदिक काल में वेदों के पठन-पाठन का विशेष प्रचार था और लोग नित्य ही वेद प्रचार में रत रहते थे तथा वर्षा ऋतु में वेद के पारायण का विशेष आयोजन किया जाता था। इसका कारण यह था कि भारतवर्ष वर्षाबहुल तथा कृषि प्रधान देश है। यहां की जनता आषाढ़ और श्रावण में कृषि के कार्यों में विशेषतः व्यस्त रहती है। श्रावणी फसल की जुताई और बुआई आषाढ़ से प्रारम्भ होकर श्रावण के अन्त तक समाप्त हो जाती है। इस समय श्रावण पूर्णिमा पर ग्रामीण जनता कृषि के कार्यों से निवृत्ति पाकर तथा आने वाली फसल के आगमन से आशान्वित हो जाती है। क्षत्रिय वर्ग भी इस समय दिग्विजय यात्रा से विरत हो जाता है। वैश्य भी व्यापार, यात्रा आदि कार्यों से विश्राम पाते हैं। इसलिए जनता इस दीर्घ अवकाश काल में वेद पारायण यज्ञों तथा प्रवचन में प्रवृत्त होती थी। वर्षा ऋतु में ऋषि-मुनि और सन्यासी महात्मा भी वर्षा के कारण वनस्थली और जंगलों को छोड़कर ग्रामों के निकट आकर रहने लगते थे और वहीं वेद पठन, धर्मोपदेश और ज्ञानचर्चा में अपना चातुर्मास बिताते थे। श्रद्धालु, श्रोता और वेदाध्ययन करने वाले लोग ज्ञान श्रवण और वेदपाठ से अपने समय को सफल बनाते थे और ऋषियों के इस प्रिय कार्य से उनका तर्पण मानते थे।

श्रावणी आर्यों के प्रसिद्ध पर्वों में एक महान् पर्व है। यह पर्व वैदिक पर्व है और इस पर्व का सीधा सम्बन्ध वेद के अध्ययन और अध्यापन से है। इसी आधार को लेकर आर्य समाज ने वेद सप्ताह का आयोजन इस अवसर पर किया। वेद के अध्ययन के मार्ग को आचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने प्रशस्त किया है। अतः उनके द्वारा स्थापित वेद प्रचारक आर्य समाज का कर्त्तव्य है कि वह वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाए। स्वाध्याय मनुष्य जीवन का अंग होना चाहिए। ऐसे अवसरों से प्रेरणा पाकर ही यदि हम इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाएं तो अच्छा हो। आर्यों के जीवन का स्वाध्याय एक अंग है। स्वाध्याय में प्रमाद का हमारे शास्त्रों में निषेध है। स्वाध्याय का ज्ञान के परिवर्धन में बहुत बडा महत्व है। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए लिखा गया है कि स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है, अपना परम चिकित्सक होता है, उसमें इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आती है और प्रजा की अभिवृद्धि होती है।

श्रावणी पर्व के साथ नए यज्ञोपवीत धारण करने और पुराने के छोड़ने की प्रथा भी जुड़ी हुई है। गुरूकुलों में इसी दिन नए ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार किया जाता है। इसके साथ ही श्रावणी नक्षत्र से युक्त इस पूर्णिमा को रक्षा बन्धन के रूप में भी मनाया जाता है। यह प्रथा कब से शुरू हुई इसका कोई निश्चित समय तो मालूम नहीं होता परन्तु इसकी भावना अच्छी है। रक्षा बन्धन अर्थात् रक्षा के लिए बन्धन। बहनें भाईयों की कलाई पर रक्षा का बन्धन बांध कर उनसे आशा करती हैं कि वह मुसीबत के समय में उनकी रक्षा करें। इस पवित्र संकल्प के साथ अगर इस पर्व को मनाया जाए तो कोई हानि नहीं है।

श्रावणी पर्व को सभी आर्यबन्धु उत्साह के साथ मनाएं और साथ ही स्वाध्याय और चिन्तन का व्रत लें तथा सात्विक भाव से जीवन यापन करके व्यक्तिगत रूप से अध्ययन और चिन्तन पर बल दें। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों से निवेदन है कि वे इन दिनों में अपनी- अपनी आर्य समाजों में वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन करके वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाए क्योंकि संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। श्रावणी के पर्व पर लोगों में वैदिक साहित्य का निशुःल्क वितरण करें। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के द्वारा सारा वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर वेद प्रचारार्थ दिया जाता है। लोगों में वैदिक साहित्य बांट करे उन्हें स्वाध्याय की ओर प्रेरित करें। इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें वेद के पवित्र ज्ञान का प्रचार करना होगा। वेद का ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अन्धकार दूर होता है उसी प्रकार वेद रूपी सूर्य के ज्ञान की किरणों से अज्ञान रूपी अन्धकार, कुरीतियों तथा बुराईयों का नाश होता है। इसलिए सभी आर्य समाजें इस श्रावणी पर्व को अवश्य मनाएं।

-प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

श्रावणी उपाकर्म (वेद सप्ताह)

आर्य समाज अड्डा होशियारपुर श्रद्धानन्द बाजार जालन्धर शहर में सोमवार 15 अगस्त से रविवार 21 अगस्त 2016 तक वेद प्रचार सप्ताह श्रावणी उपाकर्म का आयोजन किया जा रहा है। यज्ञ के ब्रह्मा यशस्वी विद्वान् महात्मा चैतन्य मुनि जी (सुन्दरनगर वाले) भजनोपदेशक माता सत्याप्रिया जी व श्री राजेश प्रेमी जी होंगे। प्रतिदिन प्रातः 7:15 से 9:15 बजे तक हवन यज्ञ, भजन व प्रवचन तथा प्रतिदिन सांय 7:45 से 9:15 बजे तक भजन व प्रवचन होंगे। रविवार 21 अगस्त 2016 प्रातः 8:00 बजे से 12:30 बजे तक कार्यक्रम होगा। ऋषि लंगर दोपहर 1:00 बजे होगा। आप सभी सपरिवार इष्ट मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

-रमेश कालड़ा महामन्त्री आर्य समाज

अपनी शक्ति को पहचानें युवा

ले. -कृष्ण कुमार यादव, निर्देशक डाक सेवाएं राजस्थान पश्चिमी क्षेत्र, जोधपुर

युवा वर्ग मानव शक्ति का सबसे प्राणवंत और ऊर्जस्वी वर्ग है, जो सदैव प्रगति और विकास का अगुआ रहा है। युवा किसी भी समाज और राष्ट्र के कर्णधार हैं, वे उसकी भावी निर्माता हैं। चाहे वह नेता या शासक के रूप में हों, चाहे डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, साहित्यकार व कलाकार के रूप में हों। इन सभी रूपों में उनके ऊपर अपनी सभ्यता, संस्कृति, कला एवम् ज्ञान की परम्पराओं को मानवीय संवेदनाओं के साथ आगे ले जाने का गहरा दायित्व होता है। भारत को विश्व की महाशक्ति बनाने में युवा शक्ति का सबसे बड़ा योगदान है। आज पूरी दुनिया की निगाहें युवा वर्ग पर टिकी हुई हैं। भारत विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों में से एक है और हमारी जनसंख्या का लगभग 80 फीसदी हिस्सा युवा हैं। हमारी जनसंख्या का 50 प्रतिशत हिस्सा 18-35 वर्ष की आयु का है। भारत मे जहाँ 27.5 प्रतिशत जनसंख्या 15 से 29 साल के आयुवर्ग के लोगों की है वही 41.3 प्रतिशत लोग 13 से 35 साल की उम्र के हैं। 2020 तक भारत की जनसंख्या की औसत आयु 28 वर्ष हो सकती है। अमेरिका में यह औसत आयु 38, चीन में 42 और जापान में 48 वर्ष है और इससे भारत दुनिया के सबसे युवा देशों में शामिल होगा। ऐसे में युवाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। अगर इन युवाओं को सही ढंग से तराशा और संवारा जाए तो वे राष्ट्रीय गौरव का एक नया इतिहास रच सकते हैं। युवा वर्ग अपनी मेधा, परिश्रम और लगन से सबको चमत्कृत कर सकते हैं और युवा शक्ति भारत को विश्व का मुकुटमणि बना सकती है। इसीलिए यह आवश्यक है कि युवाओं के व्यक्तित्व का निर्माण हमारी प्राथमिकता में शामिल हो।

युवा शब्द अपने आप में ही ऊर्जा और आन्दोलन का प्रतीक है। युवा को किसी राष्ट्र की नींव तो नहीं कहा जा सकता, पर यह वह दीवार अवश्य है जिस पर राष्ट्र की भावी छतों को सम्हालने का दायित्व है। भारत की कुल आबादी में युवाओं की हिस्सेदारी करीब 80 प्रतिशत है। इस युवा शक्ति का सम्पूर्ण दोहन सुनिश्चित करने की चुनौती इस समय सबसे बड़ी है। जब तक यह ऊर्जा सकारात्मक रूप में है तब तक तो ठीक है, पर ज्यों ही इसका नकारात्मक रूप में इस्तेमाल होने लगता है वह विध्वंसात्मक बन जाती है। ऐसे में यह जानना जरूरी हो जाता है कि आखिर किन कारणों से युवा ऊर्जा का सकारात्मक इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है ? वस्तुत: इसके पीछे जहाँ एक ओर अपनी संस्कृति और जीवन मूल्यों से दूर हटना है, वहीं दूसरी तरफ हमारी शिक्षा व्यवस्था का भी दोष है। इन सब के बीच आज का युवा अपने को असुरक्षित महसूस करता है, फलस्वरूप वह शार्टकट तरीकों से लम्बी दूरी की दौड़ लगाना चाहता है। जीवन के सारे मूल्यों के ऊपर उसे 'अर्थ' भारी नज़र आता है। इसके अलावा समाज में नायकों के बदलते प्रतिमान ने भी युवाओं के भटकाव में कोई कसर नहीं छोड़ी है। फिल्मी परदे और अपराध की दुनिया के नायकों की भांति वह रातों-रात उस शोहरत और मंजिल को पा लेना चाहता है, जो सिर्फ एक मृगतृष्णा है। ऐसे में एक तो उम्र का दोष उस पर व्यवस्था की विसंगतियाँ, सार्वजनिक जीवन में आदर्श नेतृत्व का अभाव एवम् नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन- ये सारी बातें मिलकर युवाओं को कुण्ठाग्रस्त एवम् भटकाव की ओर ले जाती हैं। नतीजन-अपराध, शोषण, आतंकवाद, अशिक्षा, बेरोजगारी एवम् भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ जन्म लेती हैं।

भारतीय संस्कृति ने समग्र विश्व को धर्म, कर्म, त्याग, ज्ञान, सदाचार और मानवता की भावना सिखाई है। सामाजिक मूल्यों के रक्षार्थ वर्णाश्रम व्यवस्था, संयुक्त परिवार, पुरुषार्थ एवम् गुरुकुल प्रणाली की नींव रखी। भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता समन्वय व सौहार्द रहा है, जबकि अन्य संस्कृतियाँ आत्म-केन्द्रित रही हैं। इसी कारण भारतीय दर्शन आत्मदर्शन के साथ-साथ परमात्मा दर्शन की भी मीमांसा करते हैं। अंग्रेजी शासन व्यवस्था एवम् उसके पश्चात हुए औद्योगीकरण, नगरीकरण और अन्तत: पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने भारतीय संस्कृति पर काफी प्रभाव डाला। निश्चितत: इन सबका असर युवा वर्ग पर भी पड़ा है। आर्थिक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के बाद तो युवा वर्ग के विचार-व्यवहार में काफी तेजी से परिवर्तन आया है। पूँजीवादी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बाजारी लाभ की अन्धी दौड़ और उपभोक्तावादी विचारधारा के अन्धानुकरण ने उसे ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा और शार्टकट के गर्त में धकेल दिया। कभी विद्या, श्रम, चरित्रबल और व्यवहारिकता को सफलता के मानदण्ड माना जाता था पर आज सफलता की परिभाषा ही बदल गयी है। आज का युवा अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों से परे सिर्फ आर्थिक उत्तरदायित्वों की ही चिन्ता करता है।

युवाओं को प्रभावित करने में फिल्मी दुनिया और विज्ञापनों का काफी बड़ा हाथ रहा है। इनके सकारात्मक तत्त्वों की बजाय नकारात्मक तत्त्वों ने ही युवाओं को ज्यादा प्रभावित किया है। फिल्मी परदे पर हिंसा, बलात्कार, प्रणय-दृश्य, यौन-उच्छृंखलता एवं रातों-रात अमीर बनने के दृश्यों को देखकर आज का युवा उसी ज़िन्दगी को वास्तविक रूप में जीना चाहता है। फिल्मी परदे पर पहने जाने वाले वस्त्र ही आधुनिकता का पर्याय बन गये हैं। वास्तव में परदे का नायक आज के युवा की कुण्ठाओं का विस्फोट है। पर युवा वर्ग यह नहीं सोचता कि परदे की दुनिया वास्तविक नहीं हो सकती, परदे पर अच्छा काम करने वाला नायक वास्तविक ज़िन्दगी में खलनायक भी हो सकता है।

शिक्षा व्यक्ति के भौतिक और नैतिक दोनों प्रकार के विकास का आधार तैयार करती है। यह हमारी संवेदनाओं और अवधारणाओं को परिष्कृत करती है, उनके बीच तालमेल स्थापित करती है। जिससे मन-मस्तिष्क को स्वतन्त्र वैज्ञानिक दृष्टि के विकास में सहायता मिलती है। शिक्षा ज्ञान, बुद्धि और कौशल को समृद्ध बनाती है। शिक्षा व्यवसाय नहीं ; संस्कार है। पर जब हम आज की शिक्षा व्यवस्था देखते हैं, तो यह व्यवसाय ही ज्यादा नजर आती है। शिक्षण संस्थाएं युवाओं के मस्तिष्क के लिए नए क्षितिजों के द्वार खोलने और उन्हें आज के जीवन संदर्भों की चुनौतियों का सफलतापूर्वक मुकाबला करने के लिए तैयार करती हैं। युवा वर्ग स्कूल व कॉलेजों के माध्यम से ही दुनिया को देखने की नज़र पाता है, पर शिक्षा में सामाजिक और नैतिक मूल्यों का अभाव होने के कारण वह न तो उपयोगी प्रतीत होती है तथा न ही युवा वर्ग इसमें कोई खास रुचि लेता है। अत: शिक्षा मात्र डिग्री प्राप्त करने का धंधा बन कर रह गयी है। पहले शिक्षा के प्रसार को सरस्वती की पूजा समझा जाता था, फ्री जीवन मूल्य, फिर किताबी और अन्तत: इसका सीधा सरोकार मात्र रोजगार से गया है। ऐसे में शिक्षा की व्यवहारिक उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लगने लगा है। शिक्षा संस्थानों में प्रवेश का उद्देश्य डिग्री लेकर अहम् सन्तुष्टि, मनोरंजन, नये सम्बन्ध बनाना और चुनाव लड़ना रह गया है। छात्र संघों की राजनीति ने कॉलेजों में स्वस्थ वातावरण बनाने के बजाय माहौल को दूषित ही किया है, जिससे अपराधों में बढ़ोतरी हुई है। ऐसे में युवा वर्ग की सक्रियता हिंसात्मक कार्यों, उपद्रवों, हड़तालों, अपराधों और अनुशासनहीनता के रूप में ही दिखाई देती है। शिक्षा में सामाजिक और नैतिक मूल्यों के अभाव ने युवाओं को नैतिक मूल्यों के सरेआम उल्लंघन की ओर अग्रसर किया है, मसलन-मादक द्रव्यों व धूम्रपान की आदतें, यौन-शुचिता का अभाव, कॉलेज को विद्या स्थल की बजाय फैशन ग्राउण्ड की शरणस्थली बना दिया है। दुर्भाग्य से आज के गुरुजन भी प्रभावी रूप में सामाजिक और नैतिक मूल्यों को स्थापित करने में असफल रहे हैं। **(क्रमश:)**

त्रैतवाद

ले. -आचार्य (डॉ.) धनंजय श्रीमद् दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ-गुरुकुल, पौन्धा, देहरादून (उ.खं.)

(गतांक से आगे)

ब्रह्म माया की इस प्रकार की स्थिति को स्पष्ट करने के लिये यह सर्प और रज्जू का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अन्धेरे में रज्जू, सर्प दिखलाई देता है किन्तु प्रकाश होने पर सर्प का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अर्थात् जब तक यहाँ सब प्रकार के व्यवहार हैं तब तक जगत् का व्यवहारिक अस्तित्व है परन्तु आत्म साक्षात्कार हो जाने पर ज्ञानी के लिये यह अस्तित्व केवल प्रति-भासित रह जाता है। इस प्रकार आचार्य शंकर ने तीन प्रकार की सत्ताओं को स्वीकार किया-(1) परमार्थ सत्ता-केवल चेतन की (2) व्यवहारिक सत्ता-आत्मज्ञान से पूर्व सम्पूर्ण जगत् की तथा (3) प्रतिभासित सत्ता-आत्मज्ञान होने के अनन्तर सम्पूर्ण जगत् की। अन्तिम दो सत्ताएँ अनिवर्चनीय मानी जाती हैं। अत: जगत के मूल उपादान कारण को आचार्य शंकर अनि-वर्चनीय मानते हैं।

ऐसी अवस्था में चेतन को जगत् का उपादान कारण नहीं कहा जा सकता। उपादान तो वही मूलतत्त्व माना जायेगा जिसका सीधा परिणाम अथवा जिसका विकार यह जगत् है और वह मूलतत्त्व माया ही है। इस संकट से बचने के लिए दो परिभाषिक शब्दों का प्रयोग 'परिणाम तथा विवर्त्त' किये जाते हैं। कारण के सदृश जो विकार होता है उसे परिणाम कहा जाता है तथा जो विचार विसदृश हो उसे विवर्त्त कहा जाता है। अर्थात् जगत् माया का परिणाम है तथा चेतन का विवर्त। अर्थात् माया जगत् रूप में परिणत होती है जिसका आधार चेतन तत्त्व है। आचार्य शंकर का यह कथन है कि जैसे मिट्टी से घड़ा बनता है, उस प्रकार ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती है क्योंकि मिट्टी आदि परिणामी है, ब्रह्म को परिणामी नहीं माना जा सकता। ब्रह्म कूटस्थ है जो विरुद्ध धर्मों का आश्रय नहीं हो सकता। जो कूटस्थ होता है वह परिणामी नहीं हो सकता। स्पष्ट है आचार्य शंकर ब्रह्म को परिणामी नहीं मानता। यह सम्पूर्ण विवेचन यह परिणाम देता है कि जगत् का उपादान कारण चेतन तत्त्व नहीं है। मूल तत्त्वों में जगत् मूल उपादान कारण माना जा सकता है वह केवल प्रकृति तत्त्व है। यही विवेचन दर्शन शास्त्रों में उपलब्ध होता है।

सभी छह दर्शन सम्पूर्ण जगत् की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं तथा इन सभी में वेद को निर्विरोध रूप से प्रमाण माना है तथा इनमें जिन मूल सिद्धान्तों का विवेचन है वह वेदमूलक समझने चाहिये और इस कारण भारतीय ये छह दर्शन वैदिक दर्शन कहलाते हैं। दर्शनों में चेतन-अचेतन रूप में तीन सत्ताओं को स्वीकार किया है। (1) परमात्मा की जो एक मात्र जगत् का नियन्ता, कर्त्ता-धर्मा, संहारकर्ता तथा निमित्त कारण है। (2) चेतन जीवात्मा की जो संख्या में अनन्त हैं, अल्पज्ञ हैं, अल्पशक्ति हैं तथा अपने कर्मों के द्वारा प्राप्त भोगों का निष्पादन करने हेतु जगत् में भिन्न-भिन्न देह धारण करते हैं। यहाँ परमात्मा उपास्य है तथा जीवात्मा का उपासक के रूप में वेदों में सर्वत्र वर्णन है। (3) तीसरा अनादि मूल तत्त्व प्रकृति है उसका वेदों में अन्य प्रकार से वर्णन है। यद्यपि सीधे रूप में वेदों में 'प्रकृति' पद का कोई निदेश नहीं है अपितु इसे अदिति, स्वधा, त्रिधातु, त्रिगुण, वृक्ष आदि पदों में वर्णित किया है। तथा मूल उपादान तत्त्व का वर्णन इन्हीं वेदों से किया है।

जहाँ वेद में 'प्रकृति' को 'त्रिधातु' नाम से भी पुकारा है। त्रिधातु अर्थात् तीन मूल का आधारभूत तत्वों का मेल। सांख्य दर्शन मूल उपादानकारण (प्रकृति) को तीन रूपों सत्व-रजस-तमस् की साम्यावस्था को कहा है। अर्थात् वेद में 'त्रिधातु' पद का प्रयोग जिस मूल्य उपादान के लिये किया गया है। वह सत्व-तमस् की साम्यावस्थारूप त्रिगुणात्मक 'प्रकृति' है।

इस प्रकार जगत् सृष्टि के तीन अनादि कारण हैं-(१) सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता, परमेश्वर-ईश्वर (२) जीव तथा (३) प्रकृति। शक्तियाँ शरीर में प्राण, बिजली और नाड़ी आदि के साथ संयुक्त होकर रहती है, उनसे सब शरीर का वर्तमान जानता है।

(सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास)

प्रश्न-जीव शरीर में विभु है या परिच्छिन्न ?

उत्तर-परिच्छिन्न। जो विभु होता तो जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता। इसलिए जीव का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है। (सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास।)

आत्मा के गुण, कर्म स्वभाव

प्रश्न-जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण कर्म और स्वभाव कैसा है ?

उत्तर-दोनों चेतन स्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सबको नियम में रखना, जीवों को पाप-पुण्य रूप फलों को देना आदि धर्मायुक्त कर्म हैं और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्प विद्या आदि अच्छे-बुरे कर्म हैं।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मो लिंगभूति (न्याय द० १/१/१०)

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवन मनो-गतीन्द्रि-यान्तर-विकारा:सुखदु:खे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चटात्मनो लिंगा-नि।। (वैशेषिक दर्शन ३/२/४)

दोनों सूत्रों में (इच्छा) पदार्थों के प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दु:खादि की अनिच्छा, वैर, (प्रयत्न), पुरुषार्थ, बल, (सुख) आनन्द (दु:ख) विलाप, अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक, पहचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिक में (प्राण) को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना, (निमेष) आंख मींचना (उन्मेष) आंख का खोलना (जीवन) प्राण का धारण करना (मन) निश्चय, स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना, (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तरविकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृष्णा, हर्ष, शोकादि का होना, ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है। जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ कर चला जाता है, तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसे होनेसे जो हों और न होने से न हों, वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप एवं सूर्यादि के होने से प्रकाशादि का होना और न होने से न होना है, वैसे हीजीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।

पुरुष बहुत्व-

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुष-बहुत्वम् (साख्य १.१४१)

संसार में देखा जाता है किसी का जन्म हो रहा है और किसी की मृत्यु हो रही है। जन्म-मरणादि अवस्थायें तभी सम्भव हैं जब अनेक जीवात्मा होंवे। इसमें प्रश्न उठता है कि मुक्ति का साधन करके बहुत सारे लोग मुक्त हो जायेंगे। इसका उत्तर अगले सूत्र में दिया है-

इदानीमिव सर्वत्र नात्य-न्तोच्छेदः (सांख्य १/१५६)

हम देख रहे हैं कि वर्तमान समय में पुरुषों का सर्वथा उच्छेद नहीं है। कोई मरता है तो दूसरा जन्म लेता है। मुक्ति की अवधि समाप्त होने पर आत्मा फिर शरीर धारण करता है। इसलिये सर्वथा उच्छेद का प्रश्न ही नहीं उठता। आवागमन का यह चक्र चलता ही रहता है।

त्रैतवाद-

ईश्वर : जिस प्रकार घड़े को बनाने में मिट्टी उपादान कारण और कुम्भकार निमित्त कारण है, वैसे ही सृष्टि की उत्पत्ति में प्रकृति उपादान कारण और ईश्वर निमित्त कारण है। जीव साधारण निमित्त कारण है। जड़ पदार्थ में यह सामर्थ्य नहीं कि वह स्वयं योजनाबद्ध हो जगत् रूप हो जाये। जीव का भी सामर्थ्य इतना नहीं कि इस विशाल सृष्टि की रचना कर सके। तब केवल ईश्वर ही रह जाता है जो निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होने के कारण परमाणु में भी व्याप्त हो उसे गति प्रदान कर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कर रहा है।

ईश्वर के कार्य-१. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करना।

२. सब जीवों को कर्मानुसार यथायोग्य फल देना।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

स्विष्टकृदाहुति–क्यों, कब, किससे ?

–ले. पं. अर्जुनदेव स्नातक, ५, सीताराम बिल्डिंग, फाटक, आगरा केण्ट– २७२००१]

(गतांक से आगे)

'स्विष्टकृदाहुति' यथावर्णित स्थान पर देने वाले क्या उक्त संस्कारों में यथावर्णित का पालन कर सकेंगे या करते हैं? यहाँ वे भी उक्त मीमांसा दर्शन के अनुसार– **'पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयान्'** के पक्ष का समर्थन करेंगे। फिर स्विष्टकृदाहुति में यह आपत्ति क्यों? क्या मात्र विरोध के लिए विरोध करना उचित है? या अपनी अहम्मन्यता को स्थापित करने के लिए।

हम उक्त तथ्य के समर्थन में एक हेतु उपस्थित करते हैं जिसके आधार पर पूर्णाहुति से पूर्व ही स्विष्टकृदाहुति का औचित्य सिद्ध होता है।

यज्ञ भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का वह पवित्र कर्म है जो जीवन के लक्ष्य मोक्ष–प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करता है। मोक्ष–प्राप्ति में बाधक तीन तत्व हैं–स्पृहा, ममता एवं अंहकार। इन बन्धनों से छूटने का साधन है यज्ञ। यज्ञ में बार–बार आवृति की जाती है– 'इदं न मम' यह मेरा नहीं है अपितु यह सब परमात्मा की कृपा से है। गीता में इस तथ्य को इन शब्दों में कहा है–

ब्रह्मणयाधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ५.१०॥

ब्रह्म को समर्पित होकर, आसक्ति का त्याग करके जो कर्म करता है वह जल में रहने वाले कमल के पत्र के समान बन्धन में लिप्त नहीं होता है।

वस्तुतः वीतराग होने के लिए भगवल्लीन, तन्मय होना आवश्यक है, वीतभय के लिए भगवदाश्रित होना चाहिए तो वीतक्रोध के लिए भगवद्भाव में निमग्न रहना आवश्यक है–

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥ गीता ४.१०॥

तात्पर्य यह है कि यज्ञ का उद्देश्य है– समर्पण भाव का विकास। तभी तो याज्ञिक आरम्भ में प्रार्थना करता है– **'यद् भद्रं तन्न आसुव'** जो भी मेरे लिए भद्र हो, वह प्रदान करें, मैं पूर्ण रूप से आप पर अवलम्बित हूँ। आप ही मुझे **'सुपथा नय'** सुपथ से ले चलिए। इस प्रकार याज्ञिक जिस भी सु–इष्ट शोभादायक इच्छित कामना की पूर्त्ति के लिए यज्ञ सम्पादन करता है–उसमें अधिकता वा न्यूनता के लिए **'यदस्य कर्मणो.'** इस स्विष्टकृत्, प्रायश्चित्ताहुति को प्रदान करते हुए अन्त में मौन भाव से पूर्ण समर्पित होकर एक समर्पण भाव की मौन आहुति देता है–

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदं न मम॥ यह समर्पण आहुति यज्ञान्त में उचित है। अतः स्विष्टकृदाहुति का स्थान पूर्णाहुति से पूर्व ही उचित है।

संस्कारों में महर्षि ने यहाँ निर्दिष्ट किया है वहाँ स्विष्टकृदाहुति देनी चाहिए, इसका निषेध नहीं है किन्तु पूर्णाहुति से पूर्व भी देनी आवश्यक है। वैसे भी महर्षि दयानन्द ने सन्ध्या में भी अन्तिम नमस्कार मन्त्र से पूर्व **'हे ईश्वर दयानिधे.'** के द्वारा समर्पण भाव प्रकट किया है। ठीक उसी प्रकार स्विष्टकृदाहुति के अनन्तर **'प्रजापतये.'** की मौन आहुति समर्पण भाव से युक्त है। अतः संस्कारों में तो यथानिर्दिष्ट स्थानों पर स्विष्टकृदाहुति देनी चाहिए तथा पुनः पूर्णाहुति से पूर्व भी देनी चाहिए।

स्विष्टकृदाहुति किससे?– महर्षि ने संस्कार विधि में इस 'स्विष्टकृत्' मन्त्र से पूर्व लिखा है– ''स्विष्टकृद् होमाहुति एक ही है यह घृत अथवा भात की देनी चाहिए।''

इस वचन के आधार पर 'भात' की ही आहुति देनी है, अन्य लड्डू, हलवा, बर्फी आदि गृहस्थियों द्वारा बटवाने के लिए बनवाये गए पदार्थों की आहुति का निषेध करते हैं। इसके औचित्य–अनौचित्य पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विचार आवश्यक है। इस पर विचार करते हैं।

संस्कार विधि में ही महर्षि पृष्ठ सत्रह पर 'स्थालीपाक' शीर्षक में लिखते हैं–

''नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावें।..... इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक आदि होम के लिये बनावें। आगे पुनः लिखते हैं–

''चरु अर्थात् होम के लिए पाक बनाने का विधि..... अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार–चार मुट्ठी चावल आदि ले के''

पाठक आदि शब्द को ध्यान से पढ़ें तथा यह सब होम के लिये है। आहुति देने के अनन्तर जो शेष बचे उसकी संज्ञा 'हुतशेष' है।

संस्कारविधि में ही पूर्णाहुति के बाद स्वामी जी लिखते हैं–''..... दक्षिणा देके सबको विदा कर स्त्री–पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम परोस कर पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।''

इस प्रकार यजमान यज्ञ के निमित्त शुद्धता के साथ जो भी अभ्यागत महानुभावों को 'हुतशेष' जिसकी अपर संज्ञा है उसे प्रसाद के रूप में बाँटता है, उसकी आहुति 'स्विष्टकृत्' मन्त्र से दी जा सकती है। केवल 'भात' की आहुति हो यह अनिवार्य नहीं। संस्कारविधि का सूक्ष्म अध्ययन कर महर्षि की शैली व भाव समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

ऊपर 'स्थालीपाक' में महर्षि ने ''भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि'' लिखा है। अब भात से ही 'यदस्य कर्मणो' की आहुति ऋषिसम्मत है ऐसा स्वीकार करने वालों को एक और संस्कारविधि का वचन दिखाते हैं जिसमें महर्षि ने 'यदस्य कर्मणो' से भात के अतिरिक्त अन्य पदार्थों से आहुति देने का विधान किया है–

१. सर्वप्रथम सीमन्तोन्नयन में ही 'यदस्य कर्मणो' से खिचड़ी की आहुति का विधान प्राप्त होता है।

२. शालाकर्म विधि से पूर्व नवशस्येष्टि और संवत्सरेष्टि यज्ञ में स्वामी जी संस्कारविधि में निर्देश करते हैं–

''इन चारों मन्त्रों (सीतायै, प्रजायै, शमायै, भूत्यै) से चार, और पृष्ठ २५ में लिखे (यदस्य) मन्त्र से स्विष्टकृत् होमाहुति एक, ऐसे पाँच स्थालीपाक की आहुति देवें....''

स्थालीपाक से ऋषि का तात्पर्य क्या है, यह संस्कारविधि के प्रमाण से पूर्व ही स्पष्ट हो गया है कि– ''भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि'' की संज्ञा स्थालीपाक है। आदि शब्द से महर्षि का आशय यजमान द्वारा अपने सामर्थ्यानुसार बहुमूल्यवान् वा स्वल्प मूल्य वाली जो भी वस्तु शुद्धता के साथ निर्मित की हो वह सब 'यदस्य कर्मणो' स्विष्टकृदाहुति का हव्य है। मात्र बात पर अड़े रहना उचित प्रतीत नहीं होता। जो कुछ भी हव्य पदार्थ न बनाकर मात्र सामान्य मृत आत्मा की शान्ति या अन्य किसी सार्वजनिक स्थल पर यज्ञ हो तो वहाँ ऋषि ने विकल्प दिया है घृत की आहुति देने का। निश्चय से वहाँ याजक यज्ञ के पश्चात् हुतशेष=प्रसाद के रूप में कुछ बाँटने की स्थिति में नहीं होता है। स्विष्टकृदाहुति देनी अवश्य है।

इस प्रकार हमने यत्र–तत्र स्वाध्याय करके एक निष्कर्ष महर्षि की संस्कारविधि के आधार पर ही रखने का प्रयास किया है। प्रयत्न किया है प्रमाणपूर्वक लिखने का। अन्त में हम अपने विषय में भर्तृहरि के शब्दों में यही कहना चाहेंगे–

अज्ञः सुखमाराध्यः
सुखतरमाराध्यो विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं
ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति।।

तो हम ज्ञान–लव= अल्पज्ञानी हैं अतः हमें ब्रह्मा भी समझा नहीं सकते हैं कि 'स्विष्टकृदाहुति' केवल मात्र भात की होनी चाहिए, अन्य मिष्ठान्न की नहीं।

श्रावणी पर्व (वेद सप्ताह)

आर्य समाज मन्दिर मण्डी हिमाचल प्रदेश में हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी श्रावणी पर्व (वेद सप्ताह) का पावन आयोजन रक्षाबन्धन 17 अगस्त से 21 अगस्त 2016 तक बड़ी श्रद्धापूर्वक मनाया जा रहा है। इस पावन अवसर पर प्रख्यात वेद प्रवक्ता डॉ. प्रमोद आचार्य वेद ज्ञान प्रवाहित करेंगे तथा भजनोपदेशक पं. बिमल देव अग्निहोत्री बरेली उत्तर प्रदेश अपने सुमधुर भजनों से वातावरण को भक्तिमय बनाएंगे। सभी धर्मप्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि इस पवित्र वेद सप्ताह के अवसर पर सपरिवार इष्ट मित्रों सहित भाग लें।

पृष्ठ 2 का शेष-गायत्री मन्त्र-महामन्त्र

प्रवाह, विकास की दिशा। भू: अर्थात् सता, अस्ति यही सता जब हो रही है अर्थात् होना भुव: है। भू: तब तक भू: है जब तक अस्थि ह्यह्य कोटि में है। भू: का विकास भुव: की तरफ अर्थात् है-से होना, अस्ति से भाति और यह होना एक विशेष दिशा की तरफ जिसे स्व: कहते है उसे ही सुख कहते है। वही प्रीति है। दूसरे शब्दों में भू: से भुव:, भुव: से स्व: की यात्रा, उसका विकास। उसको है से सुख तक की यात्रा आनन्द के तलाश की यात्रा।

गायत्री मन्त्र में इस यात्रा के इस प्रवाह इस विकास की दिशा में ले जाने वाले को सविता देव नाम से पुकारा गया है। सविता अर्थात् प्रसव करने वाला, पैदा करने वाला। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में भू: भुव: स्व: अस्ति भाति प्रीति है। किसी वस्तु जो है का विकास होना से सुख अर्थात् आनन्द की तरफ है। सविता की प्रेरणा से प्रात:काल कली फूल बनने के लिए खिल रही होती है तो वह है अस्ति। भाति से प्रीति की यात्रा आनन्द की यात्रा, उसका पूर्ण विकास। सविता में यह शक्ति किस की है ? गायत्री में इसे भर्ग: कहा गया है। भर्ग: का अर्थ है पकाने की शक्ति। सविता भर्ग: की शक्ति से संसार की हर वस्तु को पका रही है। यह सविता का भर्ग ही है जिससे हर वस्तु धीरे-धीरे पकती हुई भू: भुव: स्व: का मार्ग प्रशस्त करती है।

अत: गायत्री मन्त्र का अर्थ है हम सविता देव के उस भर्ग का ध्यान करते है जो संसार की प्रत्येक वस्तु को एक विशेष दिशा में धीरे-धीरे पकाता हुआ ले जा रहा है। वह दिशा कौन सी है ? सुख की आनन्द की। अस्ति भाति प्रीति की दिशा। हम उस 'सविता' के 'भर्ग' को वरण कर रहे है, चुन रहे है। अन्त में ''धियो यो न: प्रचोदयात्'' सविता का वह भर्ग जो संसार की हर वस्तु को एक निश्चित दिशा स्व: सुख आनन्द की दिशा में प्रवाहित कर रहा है। वही भर्ग हमारी बुद्धि को भी प्रेरणा दे ताकि हमें भी उस आनन्द के मार्ग पर ले चले उस विकास की प्रक्रिया में से प्रवाहित हो।

सविता का एक अर्थ सूर्य भी है। सूर्य हर वस्तु को पका रहा है यह पकना वास्तव में क्रमिक विकास भू: भुव: स्व: ही है। ब्रह्माण्ड की अर्थात् भूमि अन्तरिक्ष और द्यौ की यही प्रक्रिया हमारे पिण्ड में भी संचार करे। ब्रह्माण्ड में सूर्य (सविता) इस क्रिया का प्रतिनिधि है और हमारे पिण्ड में बुद्धि (धी)। हमारे पिण्ड में हमारी (घी) बुद्धि वही कार्य करे जो ब्रह्माण्ड में सविता (सूर्य) करता है। हमारी बुद्धि हमें अस्ति भाति एवं प्रीति की प्रक्रिया में गुजारे जैसे सविता ब्रह्मण्ड में यही अर्थ है गायत्री का। इसे हम जपे अर्थ सहित एवं उपरोक्त भावना सहित पंतजलि के शब्दों में ''तज्जपस्तदर्थभावनम्''। यही हैं सुपथ का, आनन्द का मार्ग, ''अग्ने नए सुपथा राये'' की प्रार्थना।

आर्य समाज बड़ा बाजार, १, मुन्शी सदरुद्दीन लेन, कोलकाता-७ में सम्पन्न

गत 9 जुलाई शनिवार को भारतीय आर्य भजनोपदेशक परिषद की कार्यकारिणी एवं पदाधिकारियों के चुनाव यज्ञ सत्संग के पश्चात निर्वाचन अधिकारी आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान डॉ० सोमदेव शास्त्री (मुम्बई) ने निम्नलिखित प्रकार से करायें।

प्रधान	:	सहदेव 'बेधड़क'
उप प्रधान	:	हरिसिंह आर्य (गादोज, बीजनौर)
		योगेश दत्त आर्य (बीजनौर)
महामंत्री	:	डॉ० कैलाश 'कर्मठ' (कोलकाता)
उप मंत्री	:	उषा आर्या (रेवाड़ी), उपेन्द्र आर्य (चण्डीगढ़)
प्रचार मंत्री	:	भानुप्रकाश आर्य
कोषाध्यक्ष	:	नरेशदत्त आर्य (बीजनौर)
लेखा परीक्षक	:	त्रियुगी नारायण पाठक
संरक्षक	:	स्वामी प्रणवानन्दजी (दिल्ली), ठाकुर विक्रम सिंह, डॉ० सोमदेव शास्त्री (मुम्बई)

कार्यकारिणी सदस्य

पं. सत्यपाल 'मधुर', राजकुमार आर्य, वैद्य नन्दराम आर्य, नारायण सिंह आर्य, रामकुमार आर्य, उदयवीर आर्य, सुलभा शास्त्री, सत्यप्रकाश आर्य, कुलदीप आर्य

विशेष आमंत्रित अंतरंग सदस्य : कृष्णदत्त नादान, दिनेश दत्त आर्य

पृष्ठ 5 का शेष-त्रैतवाद

गुण-ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनों है।

स्वभाव-ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है।

ईश्वर की सिद्धि-उदयनाचार्य ने न्याय कुसुमांजलि में ईश्वर की सिद्धि में आठ प्रमाण दिये हैं-

कार्ययोजन धृत्यादे: पद प्रत्ययत: श्रुते:।

वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वकृदव्यय:।।

(न्याय कुसुमांजलि)

१. कार्य-सृष्टि की रचना कार्य है। अत: इसका कारण भी होना चाहिये। बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता।

२. योजना-सृष्टि रचना के समय परमाणुओं को मिलाने में क्रिया हुई होगी। उस क्रिया का कर्ता होना चाहिये।

३. धृत्यादि-सृष्टि रचना के अनन्तर भी उसका कोई धारण करने वाला होना चाहिये।

४. पद-पद गति का वाचक है। सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों को बुनना, खेती करना और अन्य लौकिक व्यवहार पहले किसी ने सिखाये होंगे क्योंकि ये नैमित्तिक कर्म हैं।

५. प्रत्यय-वेदों में ज्ञान-प्रदान करने की शक्ति मन्त्रों के माध्यम से किसने दी ?

६. श्रुति-वेदों का ज्ञान किसने दिया ?

७. वाक्य-मनुष्यों को बोना किसने सिखाया, भाषा किसने दी?

८. संख्या-यह किसको सूझा कि दो परमाणुओं से द्वयणु और तीन द्वयणु से त्रसरेणु इत्यादि बनते हैं। इन प्रमाणों के आधार पर ईश्वर की सिद्धि होती है।

अन्य प्रमाण

१. जीवों के लिये हुये कर्म न स्वयं फल दे सकते हैं और न स्वयं जीवन ही फल की व्यवस्था अपने आप कर सकते हैं। अत ईश्वर की सिद्धि कर्मफल के दाता के रूप में भी है।

2. जगत् में सर्वत्र नियम देखा जाता है अत: उसका नियामक भी होना चाहिये।

उत्पत्ति

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव (ऋ० १०/१२८/७)

जिससे यह सृष्टि प्रकाशित हुई है।

स्थिति

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् (ऋ० १०/१२१/१)

जिसने पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त जगत् को धारण किया हुआ है।

प्रलय

नहि ते अग्ने तन्व: क्रूरमानंश मर्त्य:।

कपिर्बभस्ति तेजनम्।।

(अथर्व० ६/४८/१)

हे परमेश्वर ! मनुष्य तेरे क्रूर स्वरूप को नहीं जानते प्रलय के समय कम्पाने वाले आप प्रकाशमान सूर्य मण्डल को खा जाते हैं जैसे प्रसूता गो अपनी झिल्ली को खा लेती है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में इस विषय पर लिखा है-

प्रश्न-आप ईश्वर-ईश्वर कहते हो, उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो ?

उत्तर-सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

प्रश्न-ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण कभी नहीं घट सकता ?

उत्तर-इन्द्रियों का विषयों के साथ जो सीधा सम्बन्ध होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रिय और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध का ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है वैसे ही इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा किसी गलत कार्य में प्रवृत्त होता है उस समय आत्मा के भीतर बुरे काम करने में भय, शंका, लज्जा तथा अच्छे कर्मों के करने में अभय, निशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। यह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके शुद्धान्त:करण से युक्त योगी समाधिस्थ होकर आत्मा और परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है तब उसको उसी समय दोनों (गुण और गुणी) प्रत्यक्ष होते हैं।

वेदवाणी
हे वज्रवाले!

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ।
तवेदु स्तोमं चिकेत।।

–ऋ० ८।२।१७; साम० उ० १।२।३ ; अथर्व० २०।१८।२

ऋषि: **मेधातिथि: काण्व: प्रियमेधश्चाङ्गिरस:।।** देवता–**इन्द्र:।।** छन्द: **गायत्री।।**

विनय–हे जगत् के ईश्वर ! परम मङ्गलकारी ! मैं जो भी कोई नया कार्य शुरू करता हूँ, नया यज्ञकर्म–नया शुभकर्म प्रारम्भ करता हूँ तो वह सब तेरा ही नाम लेकर, तेरे ही भरोसे, तेरे ही बल पर शुरू करता हूँ। अपने प्रत्येक कार्य का मङ्गलाचरण मैं तेरे ही आगे झुककर, तेरी ही मानसिक वन्दना करके, करता हूँ। हे वज्रवाले ! मैं तेरे सिवाय किसी भी अन्य के आगे झुककर मङ्गल नहीं मना सकता, क्योंकि पाप से निवृत्त करने वाला वज्र तो तेरे ही हाथ में है–अनिष्टों, अमङ्गलों और विघ्नों का वास्तव में वर्जन कराने वाला वज्र तेरे ही हाथ में है तो हे वज्रधारिन् ! मैं किसी अन्य की स्तुति करके क्या पाऊँगा ? जो कार्य सचमुच एकमात्र तुम्हारे ही आश्रय से किये जाते हैं और जो मनुष्य सचमुच अपना कर्म सर्वथा तुझे अर्पण करके करते हैं तो वहाँ पराजय, असफलता या असिद्धि नाम की कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। यह बात कइयों को तनिक विचित्र–सी लगेगी, किन्तु है सर्वथा सत्य। सचमुच तब सब मङ्गल–ही–मङ्गल हो जाता है। यह सब तेरे वज्र का प्रताप है। जो लोग केवल तेरा ही आश्रय लेकर कार्य शुरू करते हैं, सर्वथा त्वदर्पित होते हैं, उनके पास निरन्तर जागता हुआ तेरा वज्र उनकी रक्षा करता है, अत: हे परम मङ्गलकारी वज्रिन् ! इस संसार में तू ही एकमात्र स्तुति करने योग्य है। मैं तो तेरी ही स्तुति करना जानता हूँ। यदि मैं किसी धनाढ्य पुरुष की स्तुति करूँ तो शायद वह मुझे मेरे कार्य के लिए धन दे देगा ; किसी प्रभावशाली पुरुष की विनती करूँ तो शायद मेरे लिए उसका प्रभाव बड़ा सहायक हो जाएगा, परन्तु हे जगत् के ईश्वर ! मैं जानता हूँ कि यह सब तभी होगा जब तेरी ऐसा इच्छा होगी। संसार के सब प्राणी, सब अमीर–ग़रीब, सब छोटे–बड़े तेरे ही बनाये हुए पुतले हैं। संसार के बड़े–से–बड़े पुरुष भी तेरे ही आश्रय पर, तेरी ही इच्छा पर जीवित हैं ; तो मैं उन पुरुषों का आश्रय लेकर क्या करूँगा ? जब तुझे अभीष्ट होता है कि किसी कार्य में धन, जन, बुद्धि आदि की सहायता मिले तो वह कहीं–न–कहीं से मिलती ही है। बल्कि हम देखते हैं कि धन, जन, मान आदि पाने के लिए जिन पुरुषों का हम भरोसा करते हैं, निरर्थक खुशामद करते हैं, वहाँ से हमें कुछ भी नहीं मिलता ; किन्तु किसी दूसरी अनाशातीत जगह से वैसी सब सहायता मिल जाती है, अत: मैं तो अपने कार्यों के प्रारम्भ में किसी भी अन्य का भरोसा नहीं करता, मैं तो केवल तेरा ही पल्ला पकड़ना जानता हूँ, मैं तो तेरी ही स्तुति करना जानता हूँ।

मेधावी बच्चों को सम्मानित किया गया

आर्य गर्ल्ज सी. सै. स्कूल बठिंड़ा के प्रांगण में दिनाँक 30–07–2016 दिन शनिवार को हवन यज्ञ करवाया गया। इस अवसर पर स्कूल के प्रधान श्री अनिल अग्रवाल जी, मैनेजर श्री निहाल चन्द सचदेवा जी, कमेटी मैंबर श्री सुरिन्द्र गर्ग जी, प्रिंसिपल श्रीमती सुषमा मैहता जी, समूह स्टाफ एवम् बच्चे शामिल हुए। रिटायर्ड अध्यापिका श्रीमती अरूणा अरोड़ा जी ने विज्ञान विषय में प्रथम आने वाली छात्रा ज्योति रानी को 1000 रूपये का नगद पुरस्कार देकर सम्मानित किया। यह ईनाम कल्पना चावला की याद में हर साल अरोड़ा परिवार की ओर से दिया जाता है। श्रीमती अरूणा अरोड़ा जो कि इस स्कूल में संस्कृत अध्यापिका थी, ने अपने विषय संस्कृत को बढ़ावा देने के लिए मैट्रिक में संस्कृत विषय में सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाललली छात्रा को नगद 1000 रूपये ईनाम देने की घोषणा की और इस वर्ष सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाली छात्रा अर्चना गुप्ता को नगद 1000 रूपये का ईनाम दिया। रिटायर्ड अध्यापिका श्रीमती सुरिन्द्र पाल जी ने भी अपने विषय गणित में 10 वीं कक्षा में प्रथम आने वाली छात्रा सविता गोयल को 1000 रूपये नगद राशि ईनाम दी। बच्चों ने वेस्ट मैटीरियल से अपने कौशल का प्रदर्शन करते हुए बहुत सुन्दर सामान बनाया। मैनेजर श्री निहाल चन्द सचदेवा जी ने बच्चों द्वारा बनाए हुए सामान की सराहना की। उन्होंने बच्चों को बहुत ज्यादा मेहनत करके आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। प्रिंसिपल श्रीमती सुषमा मैहता जी ने रिटायर्ड अध्यापिकाओं का अपने विषयों के सम्बन्धी बच्चों को बढ़ावा देने के लिए धन्यवाद किया।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।